REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 11 | ISSUE - 11 | AUGUST - 2022

केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में ग्रामीण चेतना के धार्मिक एवं सांस्कृतिक आयाम

रचना शुक्ला[1] & डॉ. परमानन्द तिवारी[2]
[1]शोधार्थी हिन्दी, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.).
[2]प्राचार्य, शासकीय तुलसी महाविद्यालय, अनूपपुर (म.प्र.).

सारांश –

कवि केदारनाथ अग्रवाल की रचनाओं में ग्रामीण चेतना के धार्मिक व सांस्कृतिक मूल्य उभरकर प्रत्यक्ष हुए हैं। कवि केदारनाथ अग्रवाल जी सामाजिक जीवन के कवि हैं। सामाजिक जीवन की विकृतियों को आंककर उनकी दृष्टि वास्तविक सत्य तक पहुंचती है। बुद्धिवाद के समर्थक होने के कारण कवि को पाप–पुण्य, स्वर्ग–नरक, कर्म–फल आदि मान्यताएँ मंजूर नहीं थी। इसी कारण धार्मिक आडंबरों, रूढ़ियों और अंधविश्वासों के प्रति केदारनाथ जी के काव्य में अनास्था दिखाई देती है। प्रगतिशील चेतना के कवि होने के नाते वे मनुष्य को सबसे अधिक महत्व देते हैं।

मुख्य शब्द – केदारनाथ, ग्रामीण चेतना, धार्मिक एवं सांस्कृतिक।

प्रस्तावना –

धर्म सांस्कृतिक व्यवहारों का प्रतिमान है, जिसके अंतर्गत पवित्र एवं मान्य विश्वासों, सांवेगिक भावनाओं आदि का व्याप्त क्रियान्वयन होता है। धर्म का मुख्य उद्देश्य मानव को कर्म के लिए प्रेरित करना रहा है। धर्म ने ही सभ्यता और संस्कृति के विकास में मानव समाज का पथ–प्रदर्शन करने का कार्य किया है। धर्म द्वारा कर्म शक्ति की प्रेरणा गीता का मूल संदेश है। मनुष्य असत्य, बुराई, अन्याय और अत्याचार से इसीलिए जूझता है कि विश्व की संचालिका शक्ति सत्य, भलाई, न्याय और सदाचार को समर्थन देती है। इसी निष्ठा और विश्वास से मानव कम–क्षेत्र की ओर प्रवृत्त होता है, यही धर्म है।

'युग की गंगा' काव्य संग्रह की भूमिका में कवि ने साफ लिखा है– ''इन कविताओं में ईश्वर का मखौल है।'' इस संग्रह की कतिपय कविताओं में धर्म के क्षेत्र में व्याप्त अंधविश्वास तथा रूढ़िगत मान्यताओं पर तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की है। 'चित्रकूट के यात्री' नामक कविता में कवि ने बुंदेलखंड के बौडम तीर्थ यात्रियों की खिल्ली उड़ाई है; जो अपने जीवनकाल में किसी न किसी प्रकार के अन्याय और अधर्म के पीछे रहे हैं। कवि के अनुसार– मनुष्य का हृदय जब तक निर्मल नहीं है, तब तक ईश्वर की प्राप्ति असंभव है। 'चित्रकूट के यात्री' नामक कविता में कवि ने लिखा है–

''दिन भर अधरम करने वाले/ परनारी को ठगने वाले/.....
भीषण हत्या करने वाले/ धर्म लूटने के अधिकारी/
टोली की टोली में निकले/ जैसे गुड़ के लोभी चींटे/
लंबी एक कतार बना के/अपने–अपने बिल से निकले।''[1]

फिर भी ये बौड़म यात्री अमावस्या के दिन 'नंगे पैरों पैदल चलकर' इस आशा से चित्रकूट जाते हैं कि उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति हो जाएगी, लेकिन यहाँ द्रष्टा कवि सोचता है कि....

''ऐसे कैसे बौड़म यात्री/गंदे जीवन से पायेंगे/
नंगे पैरों पैदल चलके/ अपने मन का कल्पित स्वर्ग/''[2]

भारत विविध जाति और धर्मों का देश है। अपने–अपने धर्म का पालन और आचरण करने की यहाँ सबको स्वतंत्रता है, परंतु धर्म की विकृति के कारण लोग धर्मांध हो गये हैं। पूजा स्थलों की अंधश्रद्धा और विद्रूपता को देखकर केदारनाथ जी उन पर विडंबन करने नहीं चूकते। ऐसे ही 'देवमूति' शीर्षक कविता में कवि ने पूजा की प्रथा को माध्यम बनाकर जन–मानस में स्थिति ईश्वर के करुणा–सागर समझने के संस्कार पर प्रहार किया है। देवमूर्ति कविता की यह पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

''छोटी–सी देवमूर्ति/आले में रक्खी थी/बेचारी औचक ही,/
चूहे के धक्के से,/ दाँसा के पत्थर पर/
नीचे गिर टूट गई/ ताज्जुब है मुझको तो/
करुणा के सागर के/अन्तर की एक बूँद/भूमि पर न छलकी।''[3]

उपर्युक्त कविता के माध्यम से कवि कहना चाहता है कि जो भगवान! देवमूर्ति को चूहे के धक्के से टूटने पर भी अपनी हिफाजत करने में असमर्थ है, वह दूसरों की रक्षा क्या करेगा? और भगवान ने देवमूर्ति के टूटने पर तनिक भी करुणा का भाव नहीं दर्शाया, जबकि यह करुणा सागर कहाँ जाता है? इसी तरह 'देवताओं की आत्महत्या' नामक कविता में भी लोगों के अंधविश्वासों के प्रति कवि का व्यंग्य है, जिसमें कवि ने गंगा में स्नान करने के लिये निकले आधुनिक देवताओं का उपहास करते हुए लिखा है–

''भटक–भटक कर जंगलों–पहाड़ों में/
देवताओं ने खो दी यो ही सारी रात/
पहुंचे जब गंगा के किनारे सब,/
फूटती थी लाली तब पूर्व के आकाश में/
कहाँ जाए? क्या करें?/भय था न देख लें यों दुर्गति मनुष्य कोई/
अच्छे चले,/घर के रहे, न रहे घाट के!।''[4]

धार्मिक विसंगति के कारण सामाजिक विषमता में और वृद्धि होती है। अपने निजी स्वार्थों के कारण धर्म के ठेकेदार समाज में दहशत निर्माण करते हैं। धर्म के सही रूप को मिटाकर इनके द्वारा उसकी विकृतियाँ निर्माण की जाती हैं, परिणामतः सामान्य जनता इसमें बुरी तरह पीसी जाती हैं। धर्म का उद्‌भव भी किसी की इच्छानुसार हुआ है। आज भी हमारे बीच में ऐसा ईश्वर है, जो अतींद्रिय मानव बनकर जीता है। इंद्रजाल और मायाजाल के बल पर लोगों की आँखों में धूल झोंककर स्वयं ईश्वर का वेष धारण करके समाज में आधुनिक देवी–देवताओं का रूप धारण करता है। लोग उन्हीं का गुड्डा–गुड्डी बनाकर पूजा करते हैं और 'त्रिदेव' धन्य हो का जयघोष करते हैं। कवि इनको शोषकों का नया हथकंडा मानते हैं।

विश्लेषण –

कवि केदारनाथ अग्रवाल ने अपने काव्य में जहाँ एक ओर धार्मिक– सांस्कृतिक मूल्यों की गिरावट के प्रति सचेत किया है, वहाँ सांस्कृतिक विरासत को बचाए रखने हेतु संवेदना के स्तर पर अभिव्यक्ति दी है। कवि धर्म तथा समाज द्वारा तथाकथित निर्मित नियमों को तोड़–मरोड़कर मानव को मानव के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। इसी कारण 'देवताओं के देश में' कवि को कहीं भी देवता नजर नहीं आते, परंतु सब कहीं आदमियों द्वारा बनाई गई कला–कृतियाँ ही विद्यमान दिखाई देती है। जैसे–

देवताओं के देश में/देवता, अब, कहीं नहीं दिखते/
देवता, अब,/आदमियों, के बनाए/देवता/

केवल कला–कृतियों में दिखते हैं।''[5]

केदारनाथ जी जब ईश्वर को कल्पना पुत्र कहते हैं, तब व इस सत्य की ओर इंगित करते हैं कि ईश्वर का जन्मदाता मनुष्य है। वह किसी आध्यात्मिक प्रपंच की देन नहीं है। कवि के शब्दों में कहें तो–

''ईश्वर को आदमी ने जन्म दिया/ईश्वर ने आदमी को नहीं दिया/
आदमी ने ईश्वर को रूप दिया; /
आदमी ने ईश्वर को बड़ा किया;/
..... आदमी का प्यारा पुत्र ईश्वर है/
ईश्वर का पुत्र नहीं आदमी है!!'' [6]

कवि धर्म के प्रवंचनापूर्ण ढोंग से भली–भाँति परिचित है। वे जनता को उससे परिचित कराना अपना कर्तव्य मानते हैं। वे धार्मिक प्रतीकों एवं मिथकों का भी नकारात्मक प्रयोग करते हैं। 'जो शिलाएँ तोड़ते हैं' की 'बिडला मंदिर' कविता में धनपतियों के परम आराध्य देवता पर व्यंग्य करते हुए लिखते हैं –

''यह ऐसा है/जैसे कोई धनी लुटेरा,/किसी देव कन्या के उर से/
रत्नहार अनमोल लूट कर/राजनगर की रति–पारंगत/
अनुपम, वेश्या के उरोज पर,/
उसे स्वार्थ सिद्ध में डाल गया है/''[7]

कवि ने अपनी रचनाओं में संकलित कई कविताओं में ईश्वर और धर्म पर व्यंग्य किया है, क्योंकि कवि धार्मिक एवं आध्यात्मिक विश्वासों को मनुष्य की प्रगति में सबसे बड़ी बाधा मानता है। समाज में फैली असमानता, अधर्म और अन्याय का बोलबाला देखकर आम–आदमी के हवाले से कवि ईश्वर से पूछता है। जैसे–

''मुझे बता दे मेरे ईश्वर! कष्ट न क्या कम होंगे/
बाधक या विरोधी पर्वत/क्या न कभी सम होंगे।''[8]

कवि पत्थर से बनाए भगवान के सम्मुख अपना सिर झुकाने के लिए तैयार नहीं हैं क्योंकि–

''आदमी ने प्रेम के भगवान को पत्थर बनाया/
और उसके सामने अभिशप्त हो मस्तक झुकाया/
मैं नहीं ऐसे निष्ठुर पाषाण को मस्तक झुकाता।''[9]

अतः कवि का आदर्श श्रमरत मनुष्य है, जिसे कवि समाज की भीड़ में खोज कर निकालते हैं।

कवि केदारनाथ अग्रवाल जी की कुछ कविताओं में ईश्वर के प्रति आस्था और आस्तिकता भी विद्यमान है। 'जो शिलाएँ तोड़ते हैं' संग्रह की प्रथम कविता 'प्रेम–निवेदन' में कवि प्रकृति के नियंता को संबोधित करते हुए कहते हैं।

''ओ शक्तिवान! सामर्थ्यवान/
उस पार क्षितिज से गान गान/
वैभव पूरित यह गा न गान।''[10]

और 'गंगा–महिमा' शीर्षक कविता में सृष्टि के तारणहार भगवान शंकर की महिमा वर्णित करते हुए लिखते हैं–

''जहर जम्यो है/कंठ कटि मैं/कोपीन कसी,/
घाली मुण्ड माल उर औघड़ की गति है/ सेवत मसान नैन/
तीन कौ विकट्ट रूप/बैल असवारी करै अजुबी सुरति है।''[11]

इसी तरह कवि ने गंगा तथा केन नदी का वर्णन भी किया है, जिसमें केन नदी विशेष उल्लेख है। 'केन' नदी का नामोल्लेख महाभारत में 'कर्णवती' के नाम से हुआ है, जो अन्य नदियों की तुलना में उपेक्षित होने के कारण कवि केदारनाथ जी अपनी रचनाओं में उन्हें यथायोग्य सम्मान देने नहीं चूकते। एक उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

''वही केन है/ इस प्रदेश के/जीर्ण जनों की जीवित धारा/.....
जैसे बहता धृति से निर्गत/हार हारती, वह न हारती।''[12]

और हिमालय पर्वत जो सदियों से संरक्षक के रूप में अनुत्तरित खड़ा है, उसके प्रति केदारजी का स्वर इन शब्दों में फूट पड़ा है। जैसे–

''अनुत्तरित मौन/अब भी अनुत्तरित है/

दिक् और काल में खड़ा हिमालय/इसका प्रतीक है।''[13]

इस प्रकार केदारनाथ जी के लिए ईश्वर केवल कल्पना की चीज नहीं श्रद्धा औश्र विश्वास की वस्तु है। अपनी कतिपय कविताओं में कवि ईश्वर और धर्म के प्रति अनास्था दिखाते हैं, वह केवल मार्क्सवादी विचारधारा के कारण, लेकिन काफी कविताओं में उनकी ईश्वर पर आस्तिकता भी प्रदर्शित हुई है। जहाँ पर धार्मिक आडंबरों द्वारा शोषण के विभिन्न चित्र मिलते हैं। कहीं–कहीं उसमें प्रगतिशील चिंतन को भी दर्शाया गया है। कवि ऐसे ही धर्माचार पर आघात करते हैं, जो मनुष्यता की सरलता और सुबोध मार्ग का ह्रास कर उस बुरे आचरण में फँसता है। दरअसल, कवि समाज को आडंबर मुक्त बनाकर एक नए समाज की रचना करना चाहता है।

केदारनाथ अग्रवाल का गाँवों से विशेष लगाव था। इसी कारण गाँव की अभाव भरी जिन्दगी और कुरुपताओं को वे अनदेखा नहीं कर सके। गाँव की पूरी सच्चाई उनकी कविताओं में व्यक्त हुई है।

उनकी कविता का बुनियादी सरोकार मनुष्य और मनुष्यता है। उन्होंने मानवीय जीवन में नैतिक मूल्यों को अधिक महत्त्व दिया है। स्वार्थ, ईर्ष्या, द्वेष आदि का विरोध तथा प्रेम, त्याग, बलिदान, संयम, अहिंसा, शांति तथा इन्सानियत आदि का समर्थन किया है।

धार्मिक क्षेत्र में असंख्य कुप्रथाओं का प्रचलन हुआ है। मूर्तिपूजा, तीर्थ, व्रत, रोजा, नमाज, भगवा वस्त्र, लम्बी दाढ़ी आदि के कारण इस क्षेत्र में वामाचार तथा व्यभिचार बढ़ गया है। लोगों ने भगवान को प्रेम से पत्थर बनाया है, उसके सामने अभिशप्त होकर मस्तक झुकाया है। किन्तु सचेत कवि ऐसे निष्ठुर पाषाण को भगवान नहीं मानते, न ही उसके सामने मस्तक झुकाते हैं। समाज में भ्रान्ति से परलोक का नाटक रचाया है। इस परलोक ने लोकवैभव को मिटाया है। कवि स्वयं नया इंसान बनकर मानवोचित सभ्यता की शक्ति का दर्पण बनाना चाहते हैं।

निष्कर्ष –

निष्कर्षतः मैं कह सकती हूँ कि कवि केदारनाथ जी ने सांस्कृतिक रूपों में दीपावली, नागपंचमी, दशहरा, ईद, जैसे उत्सव त्यौहारों का गौरवगान किया है। वे ग्रामीण परिवेश के पुरोधा कवि रहे हैं। धार्मिक क्षेत्र में व्याप्त पाखण्ड, अंध श्रद्धा, अंधविश्वास, रीतिरिवाज, मान्यताएँ आदि का विरोध प्रत्येक प्रगतिशील कवि ने किया है। इस कार्य में कवि केदारनाथ अग्रवाल सबसे आगे हैं। कविताओं के माध्यम से धार्मिक क्षेत्र में जागृति लाना उनका प्रमुख उद्देश्य रहा है।

संदर्भ –

[1] केदारनाथ अग्रवाल – युग की गंगा, पृष्ठ 8
[2] केदारनाथ अग्रवाल – युग की गंगा, पृष्ठ 25
[3] केदारनाथ अग्रवाल – गुलमेहंदी, पृष्ठ 33
[4] केदारनाथ अग्रवाल – गुलमेहंदी, पृष्ठ 36
[5] केदारनाथ अग्रवाल – मार–प्यार की थापें, पृष्ठ 74
[6] केदारनाथ अग्रवाल – जो शिलाएँ तोड़ते हैं, पृष्ठ 102
[7] केदारनाथ अग्रवाल – जो शिलाएँ तोड़ते हैं, पृष्ठ 106
[8] केदारनाथ अग्रवाल – जो शिलाएँ तोड़ते हैं, पृष्ठ 64
[9] संपादक डॉ. अशोक त्रिपाठी–बसंत में प्रसन्न हुई धरती–केदारनाथ अग्रवाल, पृष्ठ 70
[10] केदारनाथ अग्रवाल – जो शिलाएँ तोड़ते हैं, पृष्ठ 19
[11] केदारनाथ अग्रवाल – जो शिलाएँ तोड़ते हैं, पृष्ठ 41
[12] संपादक डॉ. अशोक त्रिपाठी–कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देन–केदारनाथ अग्रवाल, पृष्ठ 41
[13] संपादक डॉ. अशोक त्रिपाठी–बसंत में प्रसन्न हुई धरती–केदारनाथ अग्रवाल, पृष्ठ 37